भारतीय संविधान और संवैधानिक व्याख्या

drishtiias.com/hindi/printpdf/the-four-phases-of-constitutional-interpretation

इस Editorial में The Hindu, The Indian Express, Business Line आदि में प्रकाशित लेखों का विश्लेषण किया गया है। इस लेख में एक जीवंत दस्तावेज़ के रूप में संविधान और उसके विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या से संबंधित बिंदुओं पर चर्चा की गई है। आवश्यकतानुसार, यथास्थान टीम दृष्टि के इनपुट भी शामिल किये गए हैं।

संदर्भ

भारतीय संविधान को राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान जागृत राजनीतिक चेतना का परिणाम माना जाता है। राष्ट्रीय आंदोलन या स्वतंत्रता संघर्ष की पृष्ठभूमि में समाज के विभिन्न वर्गों- पुरुष, महिला, श्रमिक, विद्यार्थी, वकील, पूंजीपति के साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रों- पूर्वोत्तर, पश्चिमोत्तर, दक्षिण और उत्तर-मध्य के बीच बेहतर समन्वय देखा गया। इसी समन्वय और विभिन्न वर्गों की महत्त्वाकांक्षाओं की पृष्ठभूमि में भारतीय संविधान का निरूपण किया गया और इसकी प्रस्तावना में राज्य की शक्ति को जनता में निहित बताया गया। भारतीय संविधान में सभी वर्गो के हितों के मद्देनज़र विस्तृत प्रावधानों का समावेश किया गया है, साथ ही सर्वोच्च न्यायालय की विभिन्न व्याख्याओं के माध्यम से भी बदलती परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न अधिकारों को सम्मिलित किया गया। इसके परिणामस्वरूप स्वतंत्रता के 70 वर्षों पश्चात् भी भारतीय संविधान अक्षुण्ण, जीवंत और क्रियाशील बना हुआ है।

भारतीय संविधान- एक जीवंत दस्तावेज़

सामान्य अवधारणा के अनुसार, संविधान नियमों और उपनियमों का एक ऐसा लिखित दस्तावेज़ है, जिसके आधार पर किसी राष्ट्र की सरकार का संचालन किया जाता है। यह देश की राजनीतिक व्यवस्था का बुनियादी ढाँचा निर्धारित करता है। यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक देश का संविधान उस देश के आदर्शों, उद्देश्यों व मूल्यों का संचित प्रतिबिंब होता है। संविधान एक जड़ दस्तावेज़ नहीं होता, बल्कि समय के साथ यह निरंतर विकसित होता रहता है। इस संदर्भ में भारतीय संविधान को एक प्रमुख उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। भारत में संविधान के निर्माण का श्रेय मुख्यतः संविधान सभा को दिया जाता है। संविधान सभा के गठन का विचार सर्वप्रथम वर्ष 1934 में वामपंथी नेता एम.एन. रॉय द्वारा दिया गया था। वर्ष 1946 में 'क्रिप्स मिशन' की असफलता के पश्चात् तीन सदस्यीय कैबिनेट मिशन को भारत भेजा गया। कैबिनेट मिशन द्वारा पारित एक प्रस्ताव के माध्यम से अंततः भारतीय संविधान के निर्माण के लिये एक बुनियादी ढाँचे का प्रारूप स्वीकार कर लिया गया, जिसे 'संविधान सभा' का नाम दिया गया। भारत का संविधान देश का सर्वोच्च कानून है। यह सरकार के मौलिक राजनीतिक सिद्धांतों, प्रक्रियाओं, प्रथाओं, अधिकारों, शक्तियों और कर्त्तव्यों का निर्धारण करता है। भारतीय संविधान दुनिया का सबसे लंबा लिखित संविधान है जो तत्त्वों और मूल भावना की दृष्टि से अद्वितीय है। मूल रूप से भारतीय संविधान में कुल 395 अनुच्छेद (22 भागों में विभाजित) और 8 अनुसूचियाँ थी, किंतु विभिन्न संशोधनों के परिणामस्वरूप वर्तमान में इसमें कुल 470 अनुच्छेद (25 भागों

में विभाजित) और 12 अनुसूचियां हैं। संविधान के तीसरे भाग में 6 मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है। वस्तुतः मौलिक अधिकार का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक लोकतंत्र की भावना को प्रोत्साहन देना है। यह एक प्रकार से कार्यपालिका और विधायिका के मनमाने कानूनों पर निरोधक की तरह कार्य करता है। मौलिक अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में इन्हें न्यायालय के माध्यम से लागू किया जा सकता है। इसके अलावा भारतीय संविधान की धर्मनिरपेक्षता को भी इसकी एक प्रमुख विशेषता माना जाता है। धर्मनिरपेक्ष होने के कारण भारत में किसी एक धर्म को कोई विशेष मान्यता नहीं दी गई है। विदित हो कि वर्ष 1976 में 42वें संशोधन के माध्यम से संविधान की प्रस्तावना में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द जोड़ा गया था। संविधान से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न संविधान की व्याख्या अथवा अर्थविवेचन से जुड़ा हुआ है। नियमों के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय संविधान का अंतिम व्यख्याकर्त्ता या अर्थविवेचनकर्त्ता है। सर्वोच्च न्यायालय ही संविधान में निहित प्रावधानों तथा उसमें उपयोग की गई शब्दावली के अर्थ एवं निहितार्थ के विषय में अंतिम कथन प्रस्तुत कर सकता है।

संविधान के अभाव में

सामाजिक विनियमन की पहली परिकल्पना थॉमस हॉब्स द्वारा सामाजिक समझौते के सिद्धांत में की गई जिसको मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था (जहाँ मनुष्य को दो ही अधिकार प्राप्त है, पहला- अपने जीवन की रक्षा का अधिकार तथा दूसरा- अपने जीवन की रक्षा के लिये कुछ भी करने का अधिकार) की परिस्थितियों से बेहतर सामाजिक प्रगति के क्रम में देखा गया। प्राकृतिक अवस्था की परिस्थितियों में समाज में व्यापक स्तर पर अव्यवस्था व्याप्त थी क्योंकि मनुष्य स्वयं की रक्षा के नाम पर किसी दूसरे के अधिकारों का क्षण भर में ही हनन कर देता था। प्राकृतिक अवस्था की स्थिति शक्ति ही सत्य है पर आधारित थी। अतः इससे लोगों को हमेशा अपने प्राण, अधिकार एवं संपत्ति छिन जाने का संशय रहता था। अतः लोगों ने सामूहिक स्तर पर राजनीतिक और सामाजिक की बेहतर एवं समन्वित व्यवस्था के लिये सामाजिक समझौते के सिद्धांत पर सहमति व्यक्त की जिसमें सभी लोगों द्वारा एक-दूसरे के अधिकारों के सम्मान की व्यवस्था स्थापित की गई।

संवैधानिक व्याख्या और उसका महत्त्व

- 'संवैधानिक व्याख्या' का अभिप्राय संविधान के अर्थ या अनुप्रयोग से संबंधित विवादों को हल करने के प्रयास के रूप में संविधान के विभिन्न प्रावधानों की विवेचना करने से है ताकि प्रावधानों के दायरे को विस्तृत किया जा सके।
- ज़ाहिर है कि संविधान कोई जड़ दस्तावेज़ नहीं होता, बल्कि वह एक गतिशील दस्तावेज़ है, जो समाज की बदलती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये समय के साथ विकसित और बदलता रहता है।
- संसद द्वारा जिन कानूनों को पारित किया जाता है उन्हें आसानी से लागू किया जा सकता है और उतनी ही आसानी से उन्हें निरस्त भी किया जा सकता है जबकि संविधान की प्रकृति कानून से अलग होती है। संविधान का निर्माण भविष्य को ध्यान में रखकर किया जाता है और उसे निरस्त करना अपेक्षाकृत काफी कठिन होता है। इसीलिये मौजूदा परिस्थितियों के अनुसार, इसकी व्याख्या की जानी आवश्यक होती है।

भारत में संवैधानिक व्याख्या का विकास

- **पहला चरण: पाठवादी दृष्टिकोण**
  अपने शुरुआती वर्षों में सर्वोच्च न्यायालय ने एक पाठवादी दृष्टिकोण (Textualist Approach) अपनाया, जो कि संविधान में उल्लिखित शब्दों के शाब्दिक अर्थ पर केंद्रित था। उदाहरण के लिये वर्ष 1950 में ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के भाग III में उल्लेखित मौलिक अधिकारों की व्याख्या की थी, जो कि इस संदर्भ शुरुआती मामला था। इस मामले में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (CPI) के नेता ने दावा किया कि 'निवारक निरोध' कानून अनुच्छेद-19 (स्वतंत्रता का अधिकार), अनुच्छेद-21 (जीवन का अधिकार) और अनुच्छेद-22 (मनमानी गिरफ्तारी और हिरासत के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार) के साथ असंगत था। अपने फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने 'निवारक निरोध' कानून की वैधता को बरकरार रखा और स्पष्ट किया कि उक्त सभी अनुच्छेद (अनुच्छेद-19, 21, 22) पूर्णतः अलग विषय वस्तु से संबंधित हैं और इन्हें एक साथ नहीं पढ़ा जाना चाहिये। संवैधानिक व्याख्या के पहले चरण में संविधान से संबंधित सबसे विवादास्पद प्रश्न यह था कि क्या संविधान विशेष रूप से मौलिक अधिकारों में संशोधन के लिये संसद की शक्ति पर कोई सीमा है। इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने पाठवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए निष्कर्ष दिया कि संसद की शक्तियों पर इस प्रकार की कोई सीमा नहीं है।
- **दूसरा चरण: संरचनावादी दृष्टिकोण**
  दूसरे चरण में सर्वोच्च न्यायालय ने व्याख्या के अन्य तरीकों की खोज शुरू की और धीरे-धीरे संवैधानिक व्याख्या हेतु शाब्दिक अर्थ पर केंद्रित पाठवादी दृष्टिकोण का स्थान संविधान की समग्र संरचना और सुसंगतता पर केंद्रित संरचनावादी दृष्टिकोण (Structuralist Approach) ने ले लिया। वर्ष 1973 के केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि संसद की संविधान में संशोधन करने की शक्ति के तहत संविधान के मूल ढाँचे में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इसके पश्चात् वर्ष 1978 में सर्वोच्च न्यायालय ने मेनका गांधी बनाम भारत सरकार वाद में वर्ष 1950 के ए.के. गोपालन मामले के अपने फैसले को ही खारिज कर दिया। इस मामले में जीवन के अधिकार (अनुच्छेद-21) को और अधिक व्यापक रूप दिया गया तथा स्वच्छ हवा, शीघ्र विचारण और मुफ्त कानूनी सहायता जैसे अधिकारों को भी इसमें शामिल किया गया।
- **तीसरा चरण: परिणाम-उन्मुख व्याख्या**
  संवैधानिक व्याख्या के तीसरे चरण में सर्वोच्च न्यायालय का व्याख्यात्मक दर्शन अधिक परिणाम-उन्मुख हो गया और सर्वोच्च न्यायालय ने वाद से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर गहनता से विचार करने के अपने दायित्त्व की पूर्णतः उपेक्षा की। इसका एक मुख्य कारण यह था कि सर्वोच्च न्यायालय, जिसकी शुरुआत 8 न्यायाधीशों के साथ हुई थी, में अब 31 न्यायाधीश हो गए थे और लंबित मामलों की बढ़ती संख्या के कारण मात्र 2-3 न्यायाधीशों की पीठ का गठन किया जाने लगा जिससे न्यायाधीशों के मध्य वैचारिक मतभेद उत्पन्न होने लगे।
- **चौथा चरण: सामाजिक क्रांति और परिवर्तन**
  मौजूदा दौर संवैधानिक व्याख्या के विकास का चौथा चरण है, विदित हो कि हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे कई फैसले सुनाए हैं जिनमें व्यक्ति के अधिकारों को मान्यता देकर सामाजिक परिवर्तन के युग की शुरुआत की गई है।
    - बीते वर्ष सर्वोच्च न्यायालय ने 10-50 वर्ष की महिलाओं को केरल के सबरीमाला मंदिर में प्रवेश करने से रोकने वाले प्रतिबंध को हटाते हुए कहा था कि 'भक्ति में लिंगभेद नहीं हो सकता'।
    - वर्ष 2018 में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए समलैंगिकता को अपराध के दायरे से बाहर कर दिया था।

आगे की राह

- भारतीय संविधान आज़ादी के 70 वर्षों बाद भी एक जीवंत दस्तावेज़ की तरह अपना अस्तित्व बनाए हुए है। भारतीय न्यायपालिका और संवैधानिक व्याख्या की प्रक्रिया अनवरत विकास कर रही है।
- आवश्यक है कि संविधान के माध्यम से भारतीय न्यायपालिका की पारदर्शिता और जवाबदेही के मध्य संतुलन और न्यायपालिका की स्वतंत्रता बनाए रखने का प्रयास किया जाए।

प्रश्न: 'संवैधानिक व्याख्या का मौजूदा दौर सामाजिक क्रांति और परिवर्तन का दौर है।' व्याख्या कीजिये।